Volume-8, No. 2 Aug.-2021, pp. Hin.43-48

भारत में राष्ट्रवाद एवं पंडित दीनदयाल उपाध्याय एक अध्ययन

डॉ वीरेंद्र सिंह, एसोसिएट प्रोफेसर
राजनीति विज्ञान विभाग,
एम.एम.एच. कॉलेज गाजियाबाद उत्तर–प्रदेश भारत।

प्रस्तावना

राष्ट्रवाद की अवधारणा के विकास के संबंध में हमें दो बातों को ध्यान रखना चाहिए। पहली बात है सामाजिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक तथ्य के रूप में राष्ट्रीय राज्य की स्थापना और दूसरी बात है किसी जनसमूह के द्वारा राष्ट्रीय अस्तित्व का बोध कराती अनुभूति। भारत में भारतीय जनसमुदाय को अपने राष्ट्रीय अस्तित्व का बोध साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष के माध्यम से होता है। भारतीय राष्ट्र अब एक ठोस सामाजिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक यथार्थ है। उदारवादी लेखक भारतीय राष्ट्रवाद के उदय के संबंध में बहुत से कारकों तथा कारणों का उल्लेख करते हैं। इसका प्रथम महत्वपूर्ण कारण धार्मिक और सामाजिक पुनर्जागरण बताया जाता है। पुनर्जागरण आंदोलन बंगाल में राजा राममोहन राय के नेतृत्व में ब्रह्मसमाज को सामाजिक सुधार और धार्मिक पुनरूत्थान के आंदोलन का प्रतीक माना जा सकता है। इन समाज सुधारकों ने भारत के स्वर्णिम अतीत की ओर ध्यान दिलाकर भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत की और उन्हें वर्तमान पराधीनता की अवस्था से ऊपर उठने के लिए प्रेरित किया। इन आंदोलन ने सामाजिक समानता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के विचारों का समर्थन और प्रचार किया। आधुनिकता के संदर्भ में उन्होंने हमारी सामाजिक और धार्मिक परंपराओं की आलोचना की। जातिप्रथा तथा सामाजिक अन्याय की आलोचना से राष्ट्रीय एकता की भावना सुदृढ हुई और प्रजातांत्रिक विचारों के प्रसार में सहायता मिली।

मुख्य शब्द– राष्ट्रवाद, बौद्धिक पुनर्जागरण,

भारत में राष्ट्रवाद की अवधारणाः

भारतवर्ष के इतिहास, धर्म और संस्कृति की मीमांसा करने के लिए हमें अथर्ववेद से आरम्भ करना है। यदि ऋग्वेद के अन्दर उत्तरी ओर उत्तर पश्चिमी भारतीय सभ्यता के प्राचीनतम रूप दृष्टिगोचर होते हैं तो अथर्ववेद हमें प्राच्य संस्कृति अर्थात् पूर्वी भारत को संस्कृति का दर्शन कराता है। अथर्ववेद गौरवशाली और उदात्त शब्दों में घोषणा करता हैः ''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिक्याः।'' पृथ्वी हमारी माता है अर्थात् भारतवर्ष को हमें एक भौगोलिक स्थल के रूप में नहीं देखना है। भूगोल के पीछे, यहीं की प्रत्येक वस्तु में आच्छादितनीय, एक विराट मातृस्वरूप का हमें दर्शन करना है। भारतवर्ष का राष्ट्रवाद इसी तेजस्विनी भावना से आंदोलित था। अथर्ववेद के द्वादश कांड में कहा हैः सत्यं वृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति। भारतीय राष्ट्रवाद को पुष्ट करने के लिए अथर्ववेदोक्त विषाल सत्यं और महान् ऋतु की आवश्यकता है। अथर्ववेद में कहा हैः ''ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति''। राष्ट्र की रक्षा केवल सैनिक से नहीं हो सकती। धन इकट्ठा करना ही राजकीय जीवन का परम लक्ष्य नहीं है। राष्ट्र के प्रत्येक मनुष्य को दीक्षित होना होगा और व्यापक परमार्थ की भावना से अनुप्रमाणित होना ही होगा। राजनीति के क्षेत्र में इतना व्यापक आदर्शवाद संसार के किसी भी आधुनिक साहित्य में नहीं मिलता है। महान यूनानी विचारक प्लेटो के रिपब्लिक नामक ग्रंथ में भी इस प्रकार के उच्चाशय निर्मल विचार प्राप्त होते हैं। अथर्ववेद का राष्ट्रीय आदर्शवाद, जनक का राजर्षिवृत, लिच्छवि गणतंत्र का राजकीय संगठन, बुद्ध भगवान के सात महान् नियम, कौटिल्य का ''यज्ञां हि व्रतमुत्थानम्'' और अशोक का धर्मयज्ञ प्राचीन भारत की निर्मल राजनीति–धारा के तेजस्वी प्रतीक हैं। प्राचीन भारत शक्ति का संदशवाहक है। गुप्त सम्राटों का हूणों के साथ ऐतिहासिक सभा इसका उदाहरण है किंतु शक्ति के साथ संयम, यम और नियम का समन्वय होना चाहिए। यही प्राचीन भारत का सर्वतोभावेन उत्कृष्ट संदेश है।

मनुस्मृति में राष्ट्र, राज्य और देश शब्दों का उल्लेख है। राजा को स्वराष्ट्र में (स्वराष्ट्रे 7,32) न्यायवृत्त और शत्रुओं के प्रति भूखंड रखने को कहा गया है। परराज्यों के समस्त कार्यो (परराजय विकीर्षितम 7,68) की तात्विक जानकारी अपेक्षित है। जहॉ जीविका चले

वही देश निवास करने योग्य (स्वाजीव्यं 7,69) है। मनुस्मृति (7,137) में 'राष्ट्रे' का प्रयोग है। मनुस्मृति में राष्ट्रपरिरक्षण के लिए छः प्रकार के दुर्गो का वर्णन है धनुर्दुर्ग (मरूभूमि में), महीदुर्ग, अदुर्ग अर्थात् जलमयप्रदेश में, वार्क्ष, नृदुर्ग (जहां सशस्त्र सिपाही रह सकें) और सबसे उत्कृष्ट गिरिदुर्ग।

कालान्तर में भारत में बौद्धिक पुनर्जागरण आधुनिक भारतीय

राष्ट्रवाद के उद्य का एक महत्वपूर्ण घटक था। जिस प्रकार इटली के पुनर्जागरण तथा जर्मनी के धर्म सुधार आंदोलन ने यूरोपीय राष्ट्रवाद के उदय के लिए बौद्धिक आधार का काम किया था, उसी प्रकार भारत के सुधारकों तथा धार्मिक नेताओं के उपदेशों ने देशवासियों में स्वायत्त तथा आत्म–निर्णय पर आधारित राजनीतिक जीवन का निर्माण करने की इच्छा उत्पन्न की थी। भारतीय आत्मा के जागरण की सर्जनात्मक अभिव्यक्ति सर्वप्रथम दर्शन, धर्म तथा संस्कृति के क्षेत्रों में हुई और राजनीतिक आत्म चेतना का उद्य अपरिहार्य परिणाम के रूप में हुआ।

भारतीय पुनर्जागरण में अतीत को पुनर्जीवित करने की प्रवृत्ति अधिक बलवती थी। भारतीय पुनर्जागरण आंदोलन के कुछ नेताओं ने खुले रूप में इस बात का समर्थन किया कि हमें जानबूझकर वेदों, उपनिषदों, गीता, पुराणों आदि प्राचीन धर्मषास्त्रों के आधार पर अपने वर्तमान जीवन को ढालना चाहिए। उन्होंने उन भारतीयों की निंदा की जो हक्सले, डार्विन, मिल और स्पेंसर के विचारों से प्रभावित थे तथा जिनका जीवन दर्शन आध्यात्मिकता तथा राष्ट्र प्रेम से पूर्णतः शून्य हो गया था। अतीत को पुनर्जीवित करने की यह भावना आक्रामक तथा अहंकारपूर्ण विदशी सभ्यता की महान चुनौती के विरूद्ध प्रतिक्रिया के रूप में उत्पन्न हुई थी।

ब्रिटेन की प्रचण्ड राजनीतिक शक्ति तथा उसके फैलते साम्राज्यवाद के विरूद्ध प्रतिक्रिया के रूप में ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज, तथा रामकृष्ण आंदोलन आदि का उदय हुआ। पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार ने एक ऐसा नया बुद्धिजीवी वर्ग उत्पन्न कर दिया था जिसकी देश की सामाजिक तथा सांस्कृति जीवन में कहीं कोई जड़ें नहीं थी। इन पुनर्जाग्रत नवीन भारत के निर्माण में जिन महान् शक्तियों ने योगदान दिया उनमें बह्म समाज का स्थान अग्रण्य है।

आर्य समाज भारत का प्रमुख शक्तिशाली धार्मिक तथा सामाजिक आंदोलन रहा है। इसकी स्थापना 1875 में हुई थी। इन समाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती वेदों के महान् पंडित, शास्त्रार्थ–समर के महासेनानी, प्रथम श्रेणी के नैयायिक और धार्मिक एकेश्वरवाद के महान उपदेश्क थे। उसने उत्तरी भारत की हिन्दू जनता में गहरी जड़ें जमा ली थी। उसने हिन्दुओं में एक नयी आक्रामक तथा लड़ाकू भावना उत्पन्न की।

यूरोप के भारत–विद्या विशारदों तथा दार्शनिकों ने भी प्राचीन संस्कृत साहित्य का अध्ययन करके भारतीयों की आत्मविश्वास की भावना के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। शोपेनहावर, श्लेगेल, मैक्समूलर, डौयसन आदि विचारकों ने प्राचीन भारत की बड़ी प्रशंसा की। इस देश में उनकी प्रशंसात्मक टिप्पणियों का प्राचीन धर्मशास्त्रों के महत्व तथा उनमें विद्यमान बहुमूल्य ज्ञान के प्रति लोगों की श्रद्धा को अधिक दृढ बनाने के लिए व्यापक रूप से प्रयोग किया गया।

रामकृष्ण परमहंस के प्रमुख शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने एक अन्य ऐसा आंदोलन चलाया जिसने हिन्दुत्व के व्यापक समग्र रूप का पक्षपोषण किया। 1893 में शिकागो के विश्व धर्म सम्मेलन में उन्होंने जो ऐतिहासिक भूमिका अदा की, उससे अमेरिका में और अंशतः यूरोप में हिन्दुत्व के प्रचार का मार्ग प्रशस्त हुआ। यद्यपि वेदांती होने के नाते विवेकानन्द विश्व बन्धुत्व के आदर्श को मानने वाले थे, फिर भी उनमें उत्कृष्ट देशभक्ति के लिए कार्य करने की उत्कंठा थी। यद्धपि उनकी अल्पायु में ही मृत्यु हो गयी फिर भी उन्हें बंगाली राष्ट्रवाद का आध्यात्मिक जनक माना जाता है, और यह उचित ही है। बंगाली राष्ट्रवाद के नायक तथा संदेशवाहक के रूप में विवेकानन्द की भूमिका की सराहना लाला लाजपत राय तथा सुभाषचन्द्र बोस दोनों ने की है। 1892 में स्वामी जी तिलक के यहॉ पुणे में अतिथि बनकर ठहरे थे और दोनों में एक–दूसरे के प्रति गहरा सम्मान तथा प्रेम था।

मद्रास में राजनीतिक चेतना जाग्रत करने वाली महान विभूतियों में वीर राधवाचार्य, सुब्बाराव पतुल, रंगइया नाइडु तथा जी. सुब्रमण्यम अय्यर के नाम उल्लेखनीय है। थियोसोफीज का भारत में मुख्य स्थल मद्रास में था, किन्तु पश्चिमी भारत में पुनर्जागरण प्रधानतः सामाजिक तथा शैक्षिक था।

मैकाले ने भारतीय सभ्यता की उपलब्धियों को घटिया बता कर भूल की। इसमें संदेह नहीं, किन्तु वह हृदय से चाहता था कि भारत के लोग पाश्चात्य विज्ञान और चिंतन से भली–भांति परिचित हों। 1857 में बम्बई, मद्रास तथा कलकत्ता के विश्वविद्यालयों की स्थापना की गयी। 1859 में आर. जी. भण्डारकर तथा महादेव गोविन्द रानाडे ने मैट्रीकुलेशन की परीक्षा पास की। लगभग इसी समय पूना में दक्खिन कॉलेज स्थापित किया गया। पाश्चात्य शिक्षा ने भारत में एक नये प्रकार के बौद्धिक और राजनीतिक जीवन की

नींव डाली। यह बात उल्लेखनीय है कि आधुनिक महाराष्ट्र के निर्माताओं में यदि सब नही तो अधिकतर अवश्य ऐसे रहे हैं जिन्होंने पाश्चात्य शिक्षा संस्थाओं में शिक्षा पायी थी। भण्डारकर, रानाडे, चिपलूणकर, तिलक, अरगरकर, गोखले आदि सभी के पास उच्च शैक्षिक उपाधियॉ थीं। बंगाल में टैगोर परिवार के सदस्य, अरविंद, विवेकानंद, जे.सी. बोस और पी.सी. राय अंग्रेजी शिक्षा की उपज थे। यद्यपि गांधीजी ने पाश्चात्य शिक्षा की उच्च स्वर में निन्दा की, किन्तु उनके पास भी लंदन की विधि उपाधि थी। 1867 में केशवचन्द्र सेन बम्बई गये और प्रार्थना समाज की स्थापना में पहल की। आर.जी. भंडारकर (1837–1927) तथा महादेव गोविन्द रानाडे प्रार्थना समाज के दो बड़े नेता थे।

प्रार्थना समाज पर ईसाईयत के आस्तित्ववाद का भी कुछ प्रभाव था। जहां तक सामाजिक सम्बन्धों की बात थी, ब्रह्म समाज की तुलना में उसकी जड़ें हिन्दुत्व में अधिक गहरी थीं। रानाडे ने स्वयं सदैव इस बात को बल देकर कहा कि समाज ने अपने को हिन्दू समाज से पृथक करके नया सम्प्रदाय बनाने का कभी इरादा नहीं किया। आर.जी. भंडारकर भारत विद्या विशारद के रूप में सम्पूर्ण देश में विख्यात हो गये और संस्कृत के विद्वान के रूप में तो उनका नाम संसार भर में प्रसिद्ध हो गया। कुछ अर्थो में रानाडे को महाराष्ट्र के जागरण का जनक माना जाता है। उनका व्यक्तित्व इतना शक्तिशाली था कि वे बम्बई प्रान्त के सर्वाधिक महत्वशाली राजनीतिक नेताओं के गुरू बन गये। यहां तक कि गोखले भी उन्हें अपना गुरू मानते थे। रानाडे की मृत्यु के उपरांत तिलक ने जनवरी 1901 में 'केसरी' में एक लेख लिखा, और उसमें मेधा शक्ति की विशालता की दृष्टि में रानाडे की तुलना हेमाद्रि और माधवाचार्य से की। तिलक के मतानुसार ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के बाद रानाडे पहले नेता थे जिन्होंने महाराष्ट्र के शिथिल शरीर में नयी चेतना तथा शक्ति फूंक दी।

विष्णु कृष्ण चिपलूणकर (1850–1882) ओर बंकिमचन्द्र चटर्जी (1838–1898) ने आधुनिक युग में राष्ट्रीय भावनाओं को उभारने में महत्वपूर्ण योग दिया। बंकिमचन्द्र चटर्जी बंगाल के पुनर्जागरण आंदोलन के एक प्रमुख नायक थे। उन्होंने 1872 में 'बंग–दर्शन' की स्थापना की। 1882 में उन्होंने 1772–75 के सन्यासी विद्रोह पर आधारित अपना ऐतिहासिक उपन्यास 'आनन्द मठ' प्रकाशित किया। हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकास ने भी आधुनिक भारतीय पुनर्जागरण तथा राष्ट्रवाद के उत्कर्ष में एक आधारभूत तत्व का काम किया है। सदासुख लाल, राजा शिवप्रसाद (1882–95), भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1850–85), स्वामी दयानन्द सरस्वती जिन्होंने हिन्दी में सत्यार्थ प्रकाश लिखा तथा अन्य अनेक ऐसे लेखक हुए जिन्होंने हिन्दी गद्य के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया। हरीश्चन्द ने भी अपनी अनेक रचनाओं में भारत–दुर्दशा का चित्रण किया।

भारत राष्ट्रवादियों की एक मांग यह थी कि सार्वजनिक सेवाओं में अधिक से अधिक भारतीयों को प्रविष्ट किया जाय और इसके लिए 1833 के अधिकार पत्र (चार्टर एक्ट) की दुहाई दी गयी। रानी विक्टोरिया को 1858 की घोषणा में विधि के समक्ष समता, प्रतिभा के अनुसार नौकरी, धार्मिक स्वतंत्रता का राज्य की नीति के रूप में प्रतिपादन किया गया। किन्तु लिटन (कार्यकाल 1876–80) तथा कर्जन (कार्यकाल 1899–1905) के अनुसार कार्यो ने देश में नस्लगत तनाव उत्पन्न किया और साम्राज्यवाद का कुत्सित रूप उघड़कर सामने आ गया। 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना आधुनिक भारत के राष्ट्रवाद तथा स्वतंत्रता के इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण घटना थी। प्रारम्भिक वर्षो में कांग्रेस केवल एक वाद–विवाद सभा थी, जहां अठारहवीं शताब्दी के ब्रिटिश राजनीतिक नेताओं की शैली में शानदार भाषण दिये जाते थे। किन्तु 1905–1907 में उसका लगभग कायान्तरण हो गया और वह दादाभाई नौराजी, विपिनचन्द्र पाल तथा बाल गंगाधर तिलक के नेतृत्व में स्वराज अथवा स्वशासन की मांग करने लगे। 1907 में सूरत की फूट हुई तब से कांग्रेस का महत्व घटने लगा और 1908 से 1915 तक उस पर मितवादी (नरमदली) नेताओं का आधिपत्य रहा। 1916 में लखनऊ के अधिवेशन में मितवादियों तथा राष्ट्रवादियों का पुनः मेल हो गया और कांग्रेस पुनः राजनीतिक दृष्टि से मुखर हो उठी। 1920 में गांधीजी का राजनीतिक उदय हुआ। तब से कांग्रेस की जड़ें देश में गहरी जमने लगीं।

भारत में पुनर्जागरण की प्रक्रिया को एक नये मध्य वर्ग के उदय से भी बल तथा प्रोत्साहन मिला। भारत में मुगल शासन के आर्थिक पोषक तथा समर्थक जागीरदार एवं अन्य भूस्वामी थे। सामन्ती व्यवस्था ने मुगल शासन के आर्थिक आधार का काम किया। किन्तु ब्रिटिश साम्राज्यवाद की स्थापना से तथा व्यापार और वाणिज्य के पूंजीवादी आधार पर संगठित होने के कारण भारत में एक नये मध्य वर्ग का जन्म हुआ। यह वर्ग निरंतर धनी होता गया। किन्तु इसके धनी होने का कारण व्यापारिक लाभ तथा ब्याज था, न कि भू–राजस्व। इस वणिक वर्ग ने ही सामाजिक तथा राष्ट्रीय आंदोलनों का वित्तीय उत्तरदायित्व वहन किया। नगरों के बनिया वर्ग ने ब्रह्म समाज, आर्य समाज तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को उदारतापूर्वक

धन दिया और आज वह समाजवादी तथा साम्यवादी आंदोलनों को चन्दा देता है। बीसवीं शताब्दी में भारत में औद्योगिक पूंजीवाद का भी विकास हुआ। इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यापार, वाणिज्य, सट्टा, साहूकारी तथा उद्योग से जो चल सम्पत्ति उत्पादित हुई उसने सामाजिक तथा राजनीतिक आंदोलनों के भौतिक आधार को स्थापित करने में मुख्य शक्ति का काम किया है।

आधुनिक भारत में राष्ट्रवादी तथा स्वातन्त्रय आंदोलनों की प्रकृति समन्यात्मक रही है। मध्य वर्ग के लोगों तथा बुद्धिजीवियों का, जिन्होंने आधुनिक भारत की राजनीति में मुख्य भूकिा अदा की है, पोषण प्रधानतः पाश्चातय राजनीतिक साहित्य से हुआ है। मैजिनी उन प्रमुख विभूतियों में था जिनके आदर्श तथा शिक्षाओं ने भारतीय तरूणों के उत्साह को प्रज्वलित किया है। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, लाला लाजपत राय तथा विनायक सावरकर ने मैजिनी की जीवनी क्रमशः अंग्रेजी, उर्दू तथा मराठी में लिखी। बर्क के विचार भी उन दिनों वायुमंडल में थे। भारतीय मितवादी (नरमदली) निरंतर ग्लेडस्टन, कौब्डन, ब्राइट, मिल, स्पेंसर तथा मोले को उद्धत किया करते थे। गांधीजी पर टॉल्सटॉय, रस्किन, एडवर्ड कार्पेण्टर तथा सुकरात का प्रभाव पड़ा था। बर्गसॉ, हेगेल तथा नीत्शे ने कुछ अर्थ में अरविंद तथा इकबाल को प्रभावित किया है। 1920 के बाद मार्क्स, लेनिन, मुसोलिनी तथा हिटलर ने भारतीय साम्यवादियों, समाजवादियों तथा फॉरवर्ड ब्लॉक के अनुयायियों को प्रेरणा दी है। अमरीकी, फ्रांसीसी तथा रूसी क्रान्तियों ने भारत के राजनीतिक विचारकों तथा नेताओं के मन और आत्मा के निर्माण में असंदिग्ध रूप से योग दिया है।

तथापि भारतीय राष्ट्रवाद तथा स्वातन्त्रय आंदोलन का इस ढंग से निर्वचन करना नितांत अतिशयोक्तिपूर्ण होगा कि वह पूर्णतः पाश्चात्य आदर्शो तथा पद्धतियों के सांचे में ढला था। रामदास, शिवाजी, महादाजी सिन्धिया, रणजीतसिंह तथा 1857 के नेताओं ने देश–भक्ति की भावना तथा उमंग को जो अग्नि प्रज्वलित की थी उसकी भूमिका को कम महत्व देना ऐतिहासिक दृष्टि से गलत होगा। यह सत्य है कि इन महापुरूषों का राष्ट्रवाद शुद्ध ऐहिक तथा अखिल भारतीय आंदोलन नहीं था; तथापि उनके आदर्शवाद तथा वीरतापूर्ण बलिदान ने देशभक्ति के आदर्श का पोषण किया और उसी को परवर्ती विचारकों तथा नेताओं ने अधिक व्यापक अर्थ प्रदान कर दिया। इसलिए 1885 के बाद के राजनीतिक आंदोलनों को पहले के ऐतिहासिक संघर्षो से पूर्णतः पृथक मानना भारी भूल होगी। इतिहास एक गतिशील तथा सुसम्बद्ध प्रवाह है। इसलिए यद्यपि मराठे 1818 में परास्त हो गये थे और 1849 में सिक्खों को अंग्रेजों के सामने समर्पण करना पड़ा था फिर भी देशभक्ति की जो ज्वाला उन्होंने जलायी थी वह राष्ट्र के हृदय में छिपी पड़ी रही और धधकती रही। अतः यह कहना सत्य है कि 28 दिसम्बर 1885 के दिन जब अंग्रेजों के आशीर्वाद से बम्बई के गोकुलदास तेजपाल संस्कृत विद्यालय के सभा भवन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की पहली बैठक हुई तो उस समय राष्ट्र ने सहसा किसी नितांत नये मार्ग पर चलना आरम्भ नहीं कर दिया। विशेषकर महाराष्ट्र में पेशवा बाजीराव प्रथम द्वारा प्रतिपादित हिन्दू–पाद–पादशाही के आदर्श देशभक्त युवकों तथा कार्यकर्ताओं को निरंतर नवीन प्रेरणा देते रहे। इसलिए यह कहना सत्य के अधिक निकट है कि आधुनिक भारतीय राजनीति दो शक्तिशाली प्रवृत्तियों का गतिशील समन्वय है। पहली प्रवृत्ति देश को पाश्चात्य ढॉचे में ढालने की है और दूसरी ऐतिहासिक प्रवाह की अविच्छिन्नता को कायम रखने पर बल देती है। अतः राजशास्त्रात्मक चिंतन राष्ट्रवाद, धर्माधृत व्यवस्था पूंजीवादी विषमता, आत्मविमोचन आदि प्रश्नों की मीमांसा से सम्बद्ध रहा है।

दीनदयाल उपाध्याय ने जिस विचारधारा से प्रभावित होकर सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया वह तिलकवादी भारतीय परम्परा की विचारधारा थी। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सेस्थापक डॉ. केशव बलीराम हेडगोवर तिलकवादी कांग्रेसी थे, जो तिलक की मृत्यु के बाद श्री अरविंद को भारतीय राजनीति का नेतृत्व सौंपना चाहते थे। श्री अरविंद ने यह स्वीकार नहीं किया। महात्मा गांधी के नेतृत्व वाली राजनीति मुख्यतः गोखले विचारों की अनुगामिनी थी। यद्यपि कुछ विचारक यह मानते हैं कि वे उद्देश्यों की दृष्टि से गोखले के निकट थे और साधनों में तिलक के अनुयायी थे। डॉ. हेडगेवार ने अपने को उससे अलग कर हिन्दू राष्ट्र के संगठन के लिए नए संगठन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना की। दीनदयाल उपाध्याय इसी हिन्दूवादी राष्ट्रवाद के प्रवक्ता थे, जो भारतीय सांस्कृतिक परम्परा की विशुद्धतार? में विश्वास करते थे। इसलिए यह स्वाभाविक है कि हम दीनदयाल उपाध्याय के चिंतन को समझने से पूर्व इस परम्परा का कुछ विस्तार से परिचय प्राप्त करें।

भारतीय विचार परम्परा वैदिक विचारधारा से प्रारम्भ होती है, जो विश्ववादी है। इसमें सम्पूर्ण विश्व को एक इकाई माना गया हैः माता भूमिः पुत्रों अहं पृथिव्याः (भूमि माता है तथा हम पृथ्वी के पुत्र है)। वैदिक विचार विचार परम्परा मनुष्य में आर्यत्व की प्रतिष्ठापक है। वैदिक विचारधारा में आर्य शब्द

नस्लवादी न होकर श्रेष्ठ जन का परिचायक है। वैदिक ऋषि घोषणा करते हैंः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् (हम सम्पूर्ण विश्व को आर्य बनाएं)। निश्चय ही यह नस्ल परिवर्तन का नहीं, वान संस्कार सम्पादन का उद्घोष था।

वैदिक विचार परम्परा केवल आध्यात्मिक अथवा आत्मा परमात्कापरक विचार करने वाली परम्परा नहीं है। वह लौकिक समाज की समता व राष्ट्रीय समृद्धि का भी चिंतन करती है। इसके अनुसार वर्ण व्यवस्था भारत की सुविचारित समाज व्यवस्था है। वर्ण व्यवस्था सम्पन्न तथा भौतिक रूप से समृद्ध राष्ट्र के गीत वैदिक साहित्य की विशेषता है–

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणों ब्रह्मवर्चसी जायताम् ।
आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इशव्योनिव्याधी महारथो जायताम् ।
दोग्ध्री धेनुर्वोढ़ानड्वानाशुः सप्तिः पुरनिध्र्योषा,
जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजामानस्य वीरोजायताम्
निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु
फलवत्यो न औषधयः पच्यन्ताम् ।
योगक्षेमो नः कल्पाताम् ।

अर्थात् सम्पूर्ण राष्ट्र में ब्राहम्ण ब्रहमतेज से युक्त हों, क्षत्रिय धनुष बाण चढ़ाने में समर्थ हों, निरोग और महारथी हों। गएं दूध देने वाली, बैल बोझ ढोने में समर्थ, घोड़े तीव्रगामी, स्त्रियां गृहकार्य में निपुण हों, युवा संताने विजिगीशु, सभा में बैठने योग्य और बलसम्पन्न हों। हमारी आवश्यकतानुसार राष्ट्र में वर्षा होती रहे, औषधियां फल देती रहें और सभी का योगक्षेम चलता रहे।

भूमि व जन का भावमय तादात्म्य वैदिक काल से ही भारत में परिलक्षित होता है। अर्थवेद का पृथिवीसूक्त बहुत विस्तार एवं विभूति के साथ भूमि व जन के राष्ट्रवाची सम्बन्धों को निरूपित करता है। ऋग्वेद का संज्ञानसूक्त सामाजिक जीवन की समता व समरसता को निम्न मंत्रों में उद्भासित करता है –

सं गच्छध्वं सं बदध्वं, सं वो मनंसि जानताम् ।
देवा भागम् यथा पूर्वे, संजानाना उपासते ।।
समानी व आकूतिः, समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मना, यथा वः सुसहासति ।।

दान, यज्ञ, गौपालन व कृषि अर्थशास्त्र की तत्कालीन समाज शास्त्रीय विवेचना भी वैदिक ज्ञान का हिस्सा है। ऋग्वेद के धनान्नदान सूक्त की यही विषय वस्तु है। परम शक्ति, जो अति मानवी है तथा प्राकृतिक शक्तियां, जो भूमि के समान ही देवरूपा हैं, सभी पूज्य मानी गई हैं। भारतीय वैदिक चिंतन ब्रहम, प्रकृति व मानव के सम्यक् सम्बन्धों को विश्लेषित करता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध पत्र में पंडित दीनदयाल उपाध्याय के राजनीतिक चिंतन को भारत में राष्ट्रवाद की अवधारणा के रूप में विश्लेषणात्मक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। जिसमें स्वतंत्रता प्राप्ति के दौरान 1947 से पूर्व भारतीय राष्ट्रवाद एवं 1947 के बाद के राष्ट्रवाद का सामाजिक आर्थिक राजनीतिक सांस्कृतिक आधारों पर विवेचनात्मक अध्ययन किया गया है एवं पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा मूल रूप से भारत के विकास में राष्ट्रवाद की अवधारणा को प्राचीन भारतीय राष्ट्रवादी परंपरा से जोड़ने का प्रयास किया गया। जिसमें उन्होंने संपूर्ण भारतीय मानव समुदाय को जो भारतीय उपमहाद्वीप में निवासरत है। सभी को सांस्कृतिक आधार पर एक बताते हुए एकात्म मानववाद के आधार पर सकारात्मक प्रयास करते हुए देश के विकास की प्रक्रिया में भागीदारी सुनिश्चित करने का सिद्धांत एक रूप से आह्वान किया है एवं उन्होंने 1960 के दशक में देश में आए भीषण अकाल एवं चीन द्वारा किए गए आक्रमण के बाद देश में उत्पन्न हुई, निराशा को अवसर में बदलने के लिए योजना का तरीके से अंतोदय की संकल्पना एवं राष्ट्र के लिए हर मनुष्य के द्वारा प्रयासरत कर्तव्य का आलोक प्रस्तुत किया है। जिसे वर्तमान के राजनीतिक सत्तारूढ़ पार्टी के द्वारा अनेक नीतिगत योजनाओं के माध्यम से पूर्ण किया जा रहा है जिसमें अंत्योदय योजना एवं पंडित दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण विकास परियोजना एवं अन्य योजनाएं जोकि पंडित दीनदयाल उपाध्याय के सैद्धांतिक दर्शन पर आधारित हैं। जिसके माध्यम से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से गरीब एवं संसाधन ही व्यक्तियों को लाभ सुनिश्चित किया जा रहा है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने अपने राष्ट्रवादी अवलोकन में सरकार समाज समुदाय को एक रूप में प्रस्तुत करते हुए मानव के कल्याण को केंद्र में रखा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- इलेक्शन कमीशन रिपोर्ट ऑन दि फर्स्ट जनरल इन इंडिया, 1952–52, वाल्यूम 2 (स्टेटिस्टिक्स), मैनेजमेंट ऑफ पब्लिकेशन, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, दिल्ली, 1955.
- भारतीय विधान परिषद् के वाद–विवाद की सरकारी रिपोर्ट (हिन्दी संस्करण), अंक 2, संख्या 1.
- भारतीय जनसंघः घोषणाएं व प्रस्तावः 1951–72 (पॉचों भाग); भारतीय जनसंघ केन्द्रीय कार्यालय, विट्ठलभाई पटेल भवन, रफी मार्ग, नई दिल्ली, 1973.

क) सिद्धांत ओर नीतियां, घोषणा पत्र, संविधान (प्रथम खंड).
ख) आर्थिक विषयों पर प्रस्ताव (द्वितीय खंड).
ग) प्रतिरक्षा व वैदेशिक मामलों पर प्रस्ताव (तृतीय खंड).
घ) आंतरिक प्रश्नों पर प्रस्ताव (चतुर्थ खंड).
च) शिक्षा आदि व दलीय गतिविधियों पर प्रस्ताव (पंचम खंड).

- डॉ. आर.सी. पांडे, अध्यक्ष, दर्शन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, कार्यशाला 'एकात्म मानववाद के विविध आयाम', उद्घाटन भाषण, 1979, दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली.
- डॉ. मुरली मनोहर जोशी, भौतिकी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, दीनदयाल स्मृति भाषण–माला, एकात्म मानववाद, 25 सितम्बर, 1984, दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली.
- डॉ. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा, इंटिग्रल ह्यूमन एण्ड मॉडर्न इंडियन थॉट, दीनदयाल मेमारियल लेक्चर, 1978, दीनदयाल रिसर्च इंस्टीट्यूट, दिल्ली.
- अर्थवेद, 12.1.12
- विख्यात वैदिक वचन.
- यजुर्वेद, 22.22.
- ऋगवेद, 10.191.2.
- वही, 1.191.4.